REVIEW OF RESEARCH

भारत के भूमिगत जलसंसाधन, समस्याएँ और समाधान – एक विश्लेषण

डॉ. विजय कुमार सिंह

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (भूगोल विभाग)
अटल बिहारी बाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019

प्रस्तावना :

प्रकृति द्वारा निर्मित संसाधनों में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ ही जल और थल वितरण की जीव–जन्तुओं के जीवन को सहारा देने में अहम भूमिका रही है। परम्परागत एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पृथ्वी के स्वरूप के विषय में समझ विकसित करने के दौरान यह ज्ञात हुआ कि पृथ्वी अन्य ग्रहों से इसलिए अलग थी क्योकि कि यहॉ पर जीव जन्तुओं के जीवन यापन के लिए जल संसाधन के रूप में असीम स्रोत विद्यमान है। सांख्यिकीय ऑकडों के आधार पर पृथ्वी के कुल बाहरी स्वरूप का जल और थल के रूप में वास्तविक वितरण 71 प्रतिशत एवं 29 प्रतिशत बताया जाता है। ऑकड़ो से यह जाहिर होता है कि 71 प्रतिशत जल संसाधन 29 प्रतिशत स्थल पर निवास करने वाले जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों के लिए पर्याप्त है। किन्तु चिकित्सकीय एवं जैविक शास्त्रों के वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर 71 प्रतिशत जल संसाधन में सोडियम क्लोराईड, मैग्नीशियम क्लोराईड, मैग्नीशियम सल्फेट, कैल्सियम सल्फेट, पोटैशियम सल्फेट, कैल्सियम कार्बोनेट और मैग्नीशियम ब्रोमाइड जैसे 27 प्रकार के लवणों का मिश्रण पाया जाता है। जल में इसकी मात्रा 35 प्रतिहजार होने के कारण उपयोग के लायक नहीं है।

जल संसाधन को मुख्यतः दो भागो में विभाजित किया जा सकता हैंः–
(1)सतही जल संसाधन
(Surface Water Resource)
(2)भूमिगत जल संसाधन
(Underground Water Resource)
पृथ्वी की ऊपरी सतह पर विद्यमान जल राशि जो नदियों, झीलों, तलाबों, सागरों तथा महासागरों में है, को सतही जल संसाधन कहा जाता है।
पृथ्वी के धरातल के नीचे चट्टानों के छिद्रों तथा उनकी दरारों में स्थित जल को भूमिगत जल (Under grounds water) कहा जाता है। इस जल को अधः तल जल (Subsurface water) भी कहा जाता है। क्योंकि यह ऊपरी सतह के नीचे पाया जाता है। भूमिगत जल संसाधन के संरचनात्मक स्वरूप को इस चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है–

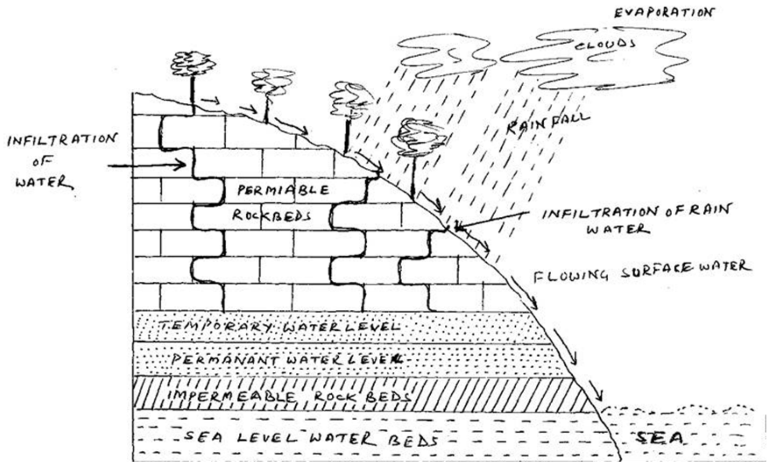

LBP PUBLICATION

इस भूमिगत जल का दो स्वरूप है। एक जो जल पृथ्वी के आन्तरिक क्षेत्रों में है तथा दूसरा जो जल पृथ्वी के आन्तरिक क्षेत्रों से गुजरता हुआ समुद्र तक जाता है। निःसन्देश भारत विकसित देश बनने की ओर अग्रसर है। व्यावसायिक तथा औद्यौगिक विकास दर, मानव विकास दर, प्रतिव्यक्ति आय एवं खर्च करने की क्षमता में लगातार वृद्धि होने के संकेत मिल रहे हैं। यह भी सही है, कि भारत कृषि के क्षेत्र में काफी उन्नति कर चुका है। जिसका कारण कृषि क्षेत्र का विस्तार, सिंचाई का बदलता स्वरूप, फसलों का चयन, जुताई के प्रकार एवं कृषि की सघनता मुख्य रूप से रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न संस्थाओं (W.H.O. UNEP. UNDP तथा UNICEF) के द्वारा किये गये सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ो के आधार पर विश्व के कई देशों के साथ–साथ भारत में भी वर्षा की मात्रा वितरण एवं सघनता और संग्रहण में बदलाव दिखाई दे रहा है। विशेषकर जहॉ तक भारत की बात है सन् 1901 ई. से लेकर 2012 ई. तक उपलब्ध ऑकड़ो का अध्ययन करने पर यह बात उभर कर सामने आती है कि वर्षा की कुल वार्षिक मात्रा में स्पष्ट रूप से कमी दिखाई नहीं पड़ती है। किन्तु वर्षा के वितरण प्रतिरूप, सघनता तथा संग्रहण में स्पष्ट रूप से तुलनात्मक परिवर्तन दिखाई दे रहा है। यह सत्य है कि जनसंख्या की वृद्धि के कारण वन क्षेत्र कृषि क्षेत्र में परिवर्तित हुए है। कृषि क्षेत्र में भोजनोपयोगी फसलों का चयन करने की बाध्यता हो गयी है। अत्यधिक उत्पादन के लिए सन् 1970 के दशक में ''हरित क्रांति'' के कारण प्रकृति प्रदत्त ''भूमिगत जलभरा क्षेत्र'' (Aquifer Zones) खण्डित कर दिया गया है। जिस कारण भूमिगत जल स्तर, समुद्री जल से मिलकर यह खारा और प्रदूषित हो गया है।

प्राकृतिक वनस्पतियों व वनो के अत्यधिक कटाव के कारण जल का लम्बवत एवं भूमिगत रिसाव (Infiltration) अवरूद्ध हो गया है, जिस कारण जलभरा क्षेत्रों में भूमिगत जल की स्थिति और बिगड़ती जा रही है। जल का लम्बवत प्रवाह (Horizental Flow) वृक्षो की जड़ों द्वारा प्रथ्वी के अन्दर की ओर आना न होकर क्षैतिज प्रवाह हो जाता है और जल प्रवाह नालों तथा नदियों के माध्यम से बहते हुए समुद्र में चला जाता है। एक ओर जहाँ लम्बवत् बहाव अवरूद्ध हो जाने के कारण आंतरिक बहाव जमीन के अन्दर बन्द हो गया, वहीं पर दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या तथा सिंचाई हेतु जल माँगो की वृद्धि के कारण नलकूपों द्वारा जल की निकासी की जाने लगी।

किसानों में जलगति किया (Hydraulic Action) की जानकारी की कमी के कारण उनके द्वारा अत्यधिक गहराई तक बोरवेल करके जल निकाला जा रहा है, जिस कारण जलभरा क्षेत्रों की स्थिति अत्यधिक भयावह होती जा रही है। जिसको निम्नांकित ग्राफ की सहायता से समझा जा सकता है ।

समस्या का कारण–

जल संरक्षण का मुद्दा भारत में व्यापक और ज्वलंत बहस का विषय बन चुका है । यह अर्थव्यवस्था और सामाजिक विकास के लिए चुनौती के रूप में सामने खड़ा है । सन् 1950 के बाद राष्ट्रीय वन नीति के बाद 40 करोड़ जनसंख्या को सुचारू जलापूर्ति के लिए यह आवश्यक था कि भारत के कुल क्षेत्र फल के 33 प्रतिशत पर वन क्षेत्र होना चाहिए था। यदि ऐसा होता तो निश्चित रूप से भारत में न तो आक्सीजन का अभाव होता, न तो कार्बन डाईआक्साईड की मात्रा बढ़ती और न ही ग्लोबल वार्मिंग (Global Warming) का बुरा प्रभाव देखने को मिलता । प्रकृति के द्वारा सारी चीजें व्यवस्थित रूप में संचालित होगी। वर्तमान में वन क्षेत्रों के ऑकड़े यह बताते हैं कि वनों का क्षेत्रफल लगातार कम होता जा रहा है। सन् 1950 के हिसाब से 33 प्रतिशत वन क्षेत्र की जो कल्पना की गई थी वह अब जब जनसंख्या 121 करोड़ से ज्यादा हो गयी है लेकिन वन क्षेत्रों का विस्तार होने के बजाय उसमें निरन्तर कमी होती जा रही है, वर्तमान में वन क्षेत्र 33 प्रतिशत के बजाय मात्र 11 प्रतिशत से भी कम रह गया है। आज भी लगभग 30 लाख लोग झूमिंग कृषि (Shifting Cultivations) और अन्य कार्यो के लिए 5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र के वनों को प्रतिवर्ष काट रहें है। जिससे पर्यावरण का असंतुलन निरन्तर बढ़ता जा रहा है। वृक्षों का कार्य सिर्फ ऑक्सीजन प्रदान करने या कार्वनडाई आक्साईड का अवशोषण करने तक सीमित नहीं है, बल्कि सबसे महत्वपूर्ण कार्य धरातलीय वही जल को लम्बवत प्रवाह के रूप में परिवर्तित करते हुए भूमिगत जल को जल भरा क्षेत्रो तक पहुचाना है किन्तु वृक्षों के कटने से भूमि के अन्दर जाने वाले जल के सारे रास्ते बन्द हो गये है। यह समस्या ऐसा नहीं है कि 1950 से

आरम्भ हुई है। यह तो मानव सभ्यता के विकास के साथ हीं प्रारम्भ हो गयी थी। सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे हुआ था। विकास के कम में संग्राहक मानव जब कृषक मानव तथा पशुचारक के रूप में सामने आया तो उसने कृषि क्षेत्रों का विस्तार करना शुरू किया इसके लिए बनों का काटना आवश्यक था। कृषि विस्तार के साथ ही इस समस्या का आरंभ होता है। कृषि के विकास और कृषि क्षेत्रों के विस्तार के साथ ही जल की मांग और आपूर्ति में अन्तर होता चला गया । मानव का विकास टिकाऊॅ विकास के पैमाने पर नहीं हुआ। टिकाऊ विकास की अवधारणा को नजर अंदाज करके प्रकृति पर मानव के वरीयता दी गयी निश्चित रूप से यदि सीधे सीधे संरक्षण की बात को ध्यान में रखा गया होता तो वन क्षेत्रों का विनाश किये बिना मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है, तो आज यह दशा न होती। पश्चिमी देशों जैसे अमेरिका आदि में संरक्षण के प्रति आम लोगों में जागरूकता की संकल्पना सन् 1930 के आस–पास ही आ गयी थी लेकिन भारत जैसे विकासशील देश में यह अब भी लगभग समझ से परे का विषय है। भारत जैसे विकासशील देश के सामने सबसे बड़ी समस्या जनसंख्या के भरणपोषण की थी इसलिए वन कृषि का स्वरूप परम्परागत और आधुनिक कृषि स्वरूप की ओर अग्रसित हुआ जिसके लिए वनों की अंधाधुन्ध कटाई शुरू हो गयी, यह तथ्य ध्यान रखने योग्य है कि जो वृक्ष जितना विशाल होगा उसकी जड़े जमीन के अन्दर अधिक गहराई तक जाती है और भूमि के अन्दर जल रिसाव में वह उतनी ही सहायक होती है। जैसे–जैसे कृषि का विकास हुआ वैसे–वैसे संरक्षण के अभाव में वन क्षेत्रों की लंबाई एवं सघनता कम होती गई । सन् 1950 के बाद लोगों ने जल भरा क्षेत्रों (Aquifer Zones) को असंतुलित कर दिया।

नदियों के आस–पास ही सभ्यताओं का विकास हुआ पानी का प्रमुख स्त्रोत नदी हुआ करती थी। जिसके किनारे नगरों का विकास हुआ जिस कारण वनों को व्यापक पैमाने पर कटाव हुआ। नदियों में जल पहुॅचानें वाले प्रमुख स्त्रोतों को अवरूद्ध कर दिया गया। नगरीय विकास के कारण जनसंख्या का विकास हुआ, व्यावसायीकरण का विकास हुआ, औद्योगिक कारखानों का विकास हुआ, जिसमें श्रम के लिए जनसंख्या का पलायन गांवों से नगरों की ओर होने लगा। बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों की अपूर्ति तथा औद्योगिक कारखानों के लिए कच्चेमाल की अपूर्ति की कृषि पर निर्भरता ने कृषि क्षेत्रों के विस्तार के लिए विवश किया और यह विस्तार वन कटाई की कीमत पर हुआ। कारखानों के निर्माण, गृह निर्माण, फर्नीचर, ईंधन, रेलवे स्लीपर आदि के लिए लकड़ी की आवश्यकता ने वन विनाश को बढ़ावा दिया। कृषि के लिए अनियन्त्रित सिंचाई के कारण अधिकांश जल वाष्पीकृत हो जाता है और ऐसी फसलों का चयन (गन्ना, धान, जूट, पटसन) किया गया जिसमें पानी की आवश्यकता अधिक होती है। अधिक जल भराव वाले क्षेत्रों में कैल्सीफिकेशन की क्रिया के कारण मृदा के संरन्ध्र छिद्र बन्द हो गये है। जिससे जल का अन्तः संचरण (Infiltration) नहीं हो पा रहा है। जिससे भूमिगत जल की मात्रा प्रभावित हो रही है। भूमिगत जल का सबसे अधिक अनियमित दोहन ट्यूबवेल के द्वारा किया गया और हो रहा है।

नदियों की अपनी एक प्रकृति होती है। मानव ने बांध बनाकर उसकी प्रकृति से छेड़छाड़ शुरू कर दिया है । बांधों के पीछे असीमित मात्रा में सिल्ट का जमाव हुआ तथा बड़ी नदी की छोटी–छोटी सहायक नदियों का तो अस्तित्व ही समाप्त हो गया। सिल्ट और अन्य अवसादों के निक्षेप के कारण अन्तः जल संचरण तो प्रभावित ही हुआ, लेकिन बांधों के वन जाने से नदी का स्वाभाविक जल प्रवाह रूक गया जिस कारण विस्तृत क्षेत्र में होने वाला भूमिगत जल का अंतः संचरण (Infiltration) भी रूक गया है।

जल संसाधन संकट दिन–प्रतिदिन विकराल होता जा रहा है । द–हिन्दु एक्सप्रेस ;जीम भ्पदकन म्गचतमेद्ध सर्वेक्षण 2015 के अनुसार इस वर्ष भूमिगत जल संकट जैसा मुद्दा छाया रहा । सर्वेक्षण के मुताबिक वर्ष 2014 में दक्षिणी–पश्चिमी मानसूनी वर्षा के 14 प्रतिशत कम होने के कारण कृषि, उपयोग और घरेलू उपयोग हेतु जलापूर्ति के लिए भूमिगत जल पर निर्भरता तीव्र गति से बढ़ रही है । पृथ्वी के अंदर भूमिगत जल का गिरता स्तर एवं प्रदूषित होने के कारण भारत के कई क्षेत्रों को भयंकर संकट से गुजरना पड़ रहा है । भूमिगत जल की मांग में हो रही प्रतिस्पर्दा के कारण मानव को विरोध एवं न्यायिक प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ रहा है ।

भूमिगत जलस्तर में कमी :–

केन्द्रीय भूमिगत जल बोर्ड (CGWB-Central Ground Water Board) के द्वारा सन् 2011 में किये गये सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन के अनुसार 433 बिलियन क्यूबिक मीटर भूमिगत जल अनुमानित है । जिसमें

उपलब्धता 398 बिलियन क्यूबिक मीटर है । उसमें से भी 62 प्रतिशत बिलियन क्यूबिक मीटर वार्षिक उपयोग में लेते है, जो चीन के वार्षिक भूमिगत जल उपयोग 198 बिलियन क्यूबिक मीटर से कहीं अधिक है । प्राप्त आँकड़ो के आधार पर भारत में कुल कुओं की संख्या के 39 प्रतिशत कुओं का जलस्तर कम होता जा रहा है । 15 राज्यों तथा दो केन्द्र शासित प्रदेशो के लगभग 1000 कुएँ अत्यधिक उपयोग की श्रेणि में आते है । जिस कारण यहाँ भूमिगत जलस्तर कम हुआ है । नासा ग्रेस (NASA GRACE) से प्राप्त वैश्विक आंकड़ों के अनुसार, दुनिया में दो क्षेत्र भूमिगत जल स्तर से सबसे अधिक ग्रस्त है । जिनमें उत्तरी–पश्चिम भारत, पाकिस्तान और उत्तरी अफ्रीका भूमिगत जलस्तर संकट ग्रस्तता के प्रथम पायदान पर है । जबकि भारत और पाकिस्तान की सिन्धु नदी बेसिन इस क्रम में दूसरे स्थान पर है । सन् 2015 में भारत के 10 राज्यो के 280 जिलो में वार्षिक वर्षा की मात्रा 14 प्रतिशत कम आँकी गई, जबकि सन् 2012 में यह 12 प्रतिशत कम थी । जल संसाधन मंत्रालय भारत सरकार द्वारा जारी सन् 2011 को आँकड़ो के अनुसार देश में उपलब्ध कुल भूमिगत जल संसाधन जिसका उपयोग किया जाता है, में से मात्र 9.72 प्रतिशत घरेलू तथा औद्योगिक उपयोग में आता है । जबकि 90 प्रतिशत जल का उपयोग केवल कृषि कार्यो के लिए किया जाता है । U.N.O. World Water Development Report-2015 के अनुसार सन् 1960 से लेकर सन् 2000 के मध्य जिन मशीनीकृत कुओं का उपयोग सिंचाई के लिये होता था, उनकी संख्या एक मिलियन से बढ़कर 19 मिलियन हो गई । इस वृद्धि का प्रमुख कारण सरकार द्वारा दी जाने वाली छूट रहीं है । सन् 1975 ई. में भारत के ''कृषि जलवायु प्रदेश'' (Agro-Climatic Region) का निर्धारण होने के बाद भी आज की तारीख तक उचित शस्य संयोजन का निर्धारण नहीं हो पाया है । तमिलनाडु में धान, महाराष्ट्र में गन्ना तथा पंजाब में गन्ना, धान और कपास की कृषि के कारण भूमिगत जल संकट पैदा हो गया ।

समस्या का निदानः–

प्रकृति प्रदत्त जल संसाधनों की प्रचुरता मानव निर्मित व्यवस्था से लगातार संघर्ष करने के बाद आज पुनः मानव के लिए संरक्षित, स्वच्छ एवं सुलभ होने के लिए विश्वव्यापी प्रयास की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है । भूमिगत जल अभाव का संकट न केवल दो राज्यों, दो राष्ट्रो के मध्य का मुद्दा है बल्कि विश्व के समस्त देशों के संकट का है । यह भी सत्य है कि अन्तराष्ट्रीय, राष्ट्रीय, राज्यीय एवं जिला स्तर पर अपने–अपने तरीके से इस संकट से उबरने के लिए प्रयास किये जाते रहे है । किन्तु आज दिनांक तक यह प्रयास किसी विशेष क्षेत्र, प्रदेश या देश के लिए किसी भी स्थिति में पर्याप्त नहीं हो सका। अब तक भू–गर्भ विज्ञान, मौसम विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान और जैविक विज्ञान, एवं वनस्पती विज्ञान के समन्वित अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भूमिगत जलस्तर का संरक्षण विश्वव्यापी प्रयास से ही किया जा सकता है । यह विषय मात्र भारत की जल संकट की समस्याओं से ही जुड़ा हुआ नहीं है, बल्कि दो देशो या कई देशो के बीच वर्षा जल का आवागमन, हिमनदियों का बहाव, पर्वतीय उच्चावच, बादलो का निर्माण, मानसूनी हवा की दिशा, जल बहाव का गुरूत्वाकर्षण के द्वारा जल भरा क्षेत्रों (Aquafer Zones) में जल भराव का कार्य करने में सहयोगी होते है । आज विश्व वैशेषिक विचार धारा का मंच है । भू–मण्डलिय का जमाना है । आज की अर्थ व्यवस्था जिस तरह से पूरे विश्व को प्रभावित करती है, उसी तरह से भूमिगत जल भी करता है । विश्व को भूमिगत जल आपूर्ति के स्रोत प्रकृति द्वारा प्रदत्त निःशुल्क अमूल्य उपहार है ।

अतः लेखक द्वारा उपर्युक्त विभिन्न विषयो का अध्ययन, विश्लेषण एवं अंतर्राष्ट्रीय जल संबंधित संस्थाओं के आँकड़ो का अवलोकन एवं परीक्षण करने से यह स्पष्ट हो गया है कि भूमिगत जल संरक्षण के लिये अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय, जिला स्तरीय, ब्लाक स्तरीय एवं प्रशासन से सबसे छोटी इकाई ग्राम स्तर पर समन्वित प्रयास करने के लिये स्पष्ट जल नीति तैयार करने की आवश्यकता है । लेखक का ऐसा मानना है कि भारत में भूमिगत जल संरक्षण के लिये त्रि–स्तरीय प्रयास होना चाहिएः–

1. शासकीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्देशन पर 1980 के दशक में योजना आयोग के प्रयास एवं आई.सी.आर. की निगरानी में भारत को 15 कृषि जलवायु वर्ग में विभाजित किया गया था । राज्य सरकारो को यह निर्देश दिया गया था कि इस कृषि जलवायु क्षेत्र की अवधारणा को लागू करे, ताकि पर्यावरण पारिस्थितिकी, मृदा उर्वरता, जलवायु का प्रभाव एवं जल तथा भूमिगत जल की उपलब्धता के साथ विकास के टिकाऊ स्वरूप को बनाये रखा जा सके, किन्तु दुःख का विषय यह है कि आज दिनांक तक किसी भी राज्य द्वारा पूरी तरह

से इसका पालन नहीं किया । अतः केन्द्र सरकार द्वारा पुनः इस दिशा में निर्देश जारी किया जाना चाहिए जो राज्य इसका पूर्णतः पालन नहीं करता उसे केन्द्र सरकार द्वारा दी जाने वाली छूट के लाभ से वंचित कर दिया जायेगा ।

2.अशासकीय स्तर पर जिसमें विभिन्न स्वंयसेवी संस्थाओं, N.G.O., सहकारी समितियों की सहायता से सरकारें अपनी नीतियां कियान्वित कराये ।

3.व्यक्तिगत स्तर पर लोगो को जल संरक्षण के प्रति जागरूक करके ।

मानव विकास के साथ बढ़ती जनसंख्या के जीवन–यापन के लिये वन क्षेत्र को कृषि क्षेत्र में परिवर्तित करने के कारण वन क्षेत्रों में जो कमी आयी उसको पूरा करने के लिये पुनः किसानो को जागरूक कर, उद्यानिकी कृषि अधिकतम लाभ का व्यवसाय कर इस तथ्य को हकीकत में बदलने का प्रयास कर ऐसी कृषि की शुरूआत की जा सकती है । जिसमें फल–फूल भी मिले और वन भी रहे । इसी को कृषि वानिकी (Agro-Forestry) कहते है । वर्तमान में यदि कृषि वानिकी को वरियता दी जाती है तो वन क्षेत्रो का विस्तार और वृद्धि की जा सकती है । यदि वन क्षेत्रो की वृद्धि हुई तो लम्बवत बहाव (Vertical Flow) पुनः शुरू हो जायेगा, क्षैतिज बहाव (Horizental Flow) से होने वाला जल नुकसान कम होगा, तथा जल भरा क्षेत्रों (Aquafer Zones) के भरने से कुओं का जल स्तर बढ़ेगा । इससे भूमिगत जल समस्या का स्थायी निदान हो सकता है । 1950 में प्रथम भारतीय वन नीति के द्वारा जिस 33 प्रतिशत वन क्षेत्र की कल्पना की गई थी उसकी भी पूर्ति की जा सकती है ।

जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर में कमी पिछले दशको में दिखायी पड़ रही है, किन्तु उस विशेष वर्गो में अभी भी जनसंख्या नियंत्रण और नियोजन के प्रति उदासिनता है । अतः सरकार के लिये जनसंख्या नियंत्रण नीति को अधिक कठोर करने की आवश्यकता है साथ ही जनसंख्या का वितरण समान रूप से हो इसके लिए वी–नगरीकरण का प्रयास करना चाहिए । मानव विकास के किसी संघटक को कियान्वित करने में वन क्षेत्र/वृक्षों की कटाई की अनुमति किसी भी कीमत में नहीं होनी चाहिए । संतुलित नगरीकरण या वी–नगरीकरण की स्पष्ट नीति सरकार को बनानी चाहिये, और कठोरता से पालन सुनिश्चित करना चाहिए । संतुलित नगरीकरण, औद्योगीकरण की अनुमति से पहले विकसित की जाने वाले पूर्ण क्षेत्रो के 40 प्रतिशत भाग पर वन लगाने का प्रावधान होना चाहिए । जल संरक्षण, मृदा संरक्षण तथा वन संरक्षण के लिये जागरूकता अभियान के तहत इसको स्कूली किताबो के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाए, साथ ही प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया तथा अन्य संचार साधनो के माध्यम से लोगो में जागरूकता पैदा की जानी चाहिए ।

LBP PUBLICATION